(देश देशान्तरों में प्रचारित, सबसे सस्ता, उच्च कोटि का आध्यात्मिक-पत्र)

सन्देश नहीं मैं स्वर्ग लोक का लाई।
इस भूतल को ही स्वर्ग बनाने आई॥

वार्षिक मूल्य २) सम्पादक-श्रीराम शर्मा आचार्य। एक अंक ≡)

वर्ष ६ मथुरा, १ जून सन् १९४५ ई० अंक

जैसे हम हैं, हमारी दुनियां भी वैसी है।

"दुनियां बहुत बुरी है। जमाना बड़ा खराब है, ईमानदारी का युग चला गया, चारों ओर बेईमानी छाई हुई है, सब लोग धोखेबाज हैं, धर्म धरती पर से उठ गया"। ऐसी उक्तियां जो आदमी बार बार दुहराता है समझ लीजिए कि यह खुद धोखेबाज और बेईमान है। इसकी इच्छित वस्तुऐं इसके चारों ओर इकट्ठी होगई हैं और उनकी सहायता से सुव्यवस्थित कल्पना चित्र इसके मन पर अंकित हो गया है। जो व्यक्ति यह कहा करता है कि दुनियां में कुछ काम नहीं है, बेकारी का बाजार गर्म है, उद्योग धंधे उठ गये, अच्छे काम मिलते ही नहीं; समझ लीजिए कि इसकी अयोग्यता इसके चेहरे पर छाई हुई है और जहां जाता है वहां के दर्पण में अपना मुख देख आता है। क्रोधी मनुष्य जहां जायगा, कोई न कोई लड़ने वाला उसे मिलही जायगा, घृणा करने वाले को कोई न कोई घृणित वस्तु मिल ही जायगी। अन्यायी मनुष्य को सब लोग बड़े बेहूदे, असभ्य और दण्ड देने योग्य दिखाई पड़ते हैं। होना यह है कि अपनी मनोभावनाओं को मनुष्य अपने सामने वालों पर थोप देता है और उन्हें वैसा ही समझता है जैसा कि वह स्वयं है। जिसे दुनियां स्वार्थी, कपटी, गंदी, दुखमय, कलुषित, दुर्गुणी, असभ्य, दिखाई पड़ती है समझ लीजिए कि इसके अन्तर में गुणों का बाहुल्य है। संसार एक लम्बा चौड़ा बहुत बढ़िया बिल्लौरी काँच का चमकदार दर्पण है इसमें अपना मुँह हूबहू दिखाई पड़ता है। जो व्यक्ति जैसा है इसके लिए त्रिगुणमयी सृष्टि में से वैसे ही तत्व निकलकर आगे

मनुष्य को देवता बनाने वाली पुस्तकें ।

जो ज्ञान युगों के प्रयत्न से मिलता है उसे हम अनायास ही आपके सामने उपस्थित करते

(१) मैं क्या हूं मूल्य ।=)
(२) सूर्य चिकित्सा विज्ञान ।=)
(३) प्राण चिकित्सा विज्ञान ।=)
(४) पर काया प्रवेश ।=)
(५) स्वस्थ और सुन्दर बनने की अद्भुत विद्या ।=)
(६) मानवीय विद्युत के चमत्कार ।=)
(७) स्वर योग से दिव्य ज्ञान ।=)
(८) भोग में योग ।=)
(९) बुद्धि बढ़ाने के उपाय ।=)
(१०) धनवान बनने के गुप्त रहस्य ।=)
(११) पुत्र या पुत्री उत्पन्न करने की विधि ।=)
(१२) बशीकरण की सच्ची सिद्धि ।=)
(१३) मरने के बाद हमारा क्या होता है ।=)
(१४) जीव जन्तुओं की बोली समझना ।=)
(१५) ईश्वर कौन है ? कहां है ? कैसा है ? ।=)
(१६) क्या धर्म ? क्या अधर्म ? ।=)
(१७) गहना कर्मणो गतिः ।=)
(१८) जीवन की गूढ़ गुत्थियों पर प्रकाश ।=)
(१९) शक्ति संचय के पथ पर ।=)
(२०) पंचाध्यायी धर्म नीति शिक्षा ।=)
(२१) आत्म गौरव की साधना
(२२) प्रतिष्ठा का उच्च सोपान
(२३) मित्र भाव बढ़ाने की कला
(२४) आन्तरिक उल्लास का विकाश
(२५) आगे बढ़ाने की तैयारी
(२६) अध्यात्म धर्म का अवलम्बन
(२७) ब्रह्म विद्या का रहस्योद्घाटन
(२८) ज्ञान योग कर्मयोग, भक्ति योग
(२९) यम-नियम
(३०) आसन और प्राणायाम
(३१) प्रत्याहार धारणा, ध्यान और समाधि ।
(३२) तुलसी के अमृतोपम गुण
(३३) आकृति देखकर मनुष्य की पहिचान
(३४) मैस्मरेज्म की अनुभव पूर्ण शिक्षा
(३५) ईश्वर और स्वर्ग प्राप्ति का सच्चा मार्ग
(३६) हस्त रेखा विज्ञान
(३७) विवेक सतसई
(३८) संजीवन विद्या
(३९) गायत्री की चमत्कारी साधना
(४०) महान जागरण

अन्य प्रकाशकों की कुछ उत्तमोत्तम पुस्तकें ।

(१) सर्प विष चिकित्सा ॥)
(२) जल चिकित्सा ॥)
(३) गर्भ निरोध [संतान होना रोकना] ।-)
(४) नत्र रोगों की प्राकृतिक चिकित्सा ॥-)
(५) दूध से सब रोगों का शर्तिया इलाज ॥)
(६) संक्षिप्त दुग्ध चिकित्सा ।=)
(७) प्राकृतिक चिकित्सा प्रश्नोत्तरी ॥)
(८) प्राकृतिक चिकित्सा का सूर्योदय (दोनों भाग) ॥।)
(९) बुढ़ापा और बीमारी से बचनेके सरल उपाय ॥)
(१०) उपवास और फलाहार चिकित्सा ॥)
(११) मिट्टी सभी रोगों की रामवाण औषधि है
(१२) पृथ्वी की रोगनाशक शक्ति
(१३) नवीन चिकित्सा पद्धति
(१४) हमें क्या खाना चाहिए
(१५) तम्बाकू प्राण घातक विष है
(१६) धूप हवा और सरदी से आरोग्य
(१७) ज्वर चिकित्सा
(१८) वस्त्रों का स्वास्थ्य पर भयंकर प्रभाव
(१९) धातु दुर्बलता की चिकित्सा
(२०) भोजन से आरोग्य रक्षा और चिकित्

नोट—कमीशन देना कतई बन्द है । आठ या इससे अधिक पुस्तकें लेने पर डाक खर्च हम अपना लगा देंगे

मथुरा १ जून सन् १९४५

दुर्भावनाओं को जीतो ।

—————

योरोप की लड़ाई खतम होगई, एशिया की खतम होने जारही है ऐसे समाचार को सुनकर वर्तमान काल की अशान्ति से ऊबा हुआ मनुष्य आशा और उत्सुकता के साथ सोचता है कि काश, युद्ध विभीषिकाओं से छुटकारा मिलजाय तो कैसा अच्छा हो ।

अधिक साधन सम्पन्न योद्धा अल्प साधन सम्पन्न को गिरा लेताहै, दो लड़तेहैं तो एक हारता ही है, इस हारजीत से शक्ति एवं साधन सम्पन्नता का पता चलताहै पर यह निश्चय नहीं होता कि इस हार या जीत से मनुष्य जाति उन भयंकर यंत्रणाओं से बचेगी जो युद्ध के कारण अनेक मार्गों द्वारा उसे सहनी पड़ती है । युद्ध में कितने मनुष्य मरे, कितने घायल हुए, कितने असमर्थ अपाहिज बने, कितने बन्दी हुए, कितने स्त्री, बच्चे, वृद्धों को अनाश्रित होना पड़ा, भुखमरी, अकाल, बीमारी आदि के कारण कितनों को ही प्राण त्यागने पड़े, इस प्रकार युद्ध के कारण मानव जाति को जो महान कष्ट हो जाते हैं । धन सम्पत्ति का जितना नाश होता है वह भी कँपादेने वाला है । जितनी पूँजी युद्ध में व्यय होती है उतनी यदि मनुष्य को सुखी बनाने में लगी होती, जितनी जन शक्ति को युद्ध का राक्षस खागया उतनी को यदि मानव सुख शान्ति के ऊपर उत्सर्ग किया गया होता तो निस्संदेह यह संसार स्वर्ग बन जाता ।

बाहरी दुनियाँ; भीतरी दुनियाँ का चित्र मात्र है । मनुष्यों के मन में जैसी भावनाऐं घुमड़ती हैं बाहरी परिस्थितियां उसीके अनुकूल तैयार हो जाती है । दूसरों को लूटकर खुद ऐश करके की अन्याय मूलक मनोवृत्ति अशान्ति का प्रधान कारण है । यह मनोवृत्ति जितनी ही उग्र होती जाती है, शोषण, दमन, अपहरण का उतना ही प्रचलन बढ़ता जाता है । जैसे रक्त में विषैले पदार्थ बढ़ जाने से शरीर फूट निकलता है उसी प्रकार अन्याय के आधार पर उत्पन्न हुई असमानता बड़े असंतोष, रोष, ईर्षा, प्रतिशोध और प्रतिस्पर्धा के भयंकर रूप में फट पड़ती है यही युद्ध है । रक्त में जब तक विष है तब तक निरोगता नहीं रह सकती, इसी प्रकार अन्याय मूलक नीति व्यवस्था के रहते संसार में अमन रहना संभव नहीं ।

इस महायुद्ध में कौन देश हार गया ? कौन हारने वाला है ? कौन जीत गया ? कौन जीतने वाला है ? यह कोई महत्व पूर्ण बात नहीं है । प्रधान प्रश्न यह है कि जिस विषमय नीति के कारण आये दिन युद्ध की विभीषिका सामने आखड़ी होती है वह नीति हारी या नहीं ? जिस विचार धारा के परिणाम स्वरूप युद्ध और कलह उत्पन्न होते हैं वह परास्त हुई या नहीं ? यदि वह पूर्ववत् जैसी की तैसी बनी हुई हो तो समझना चाहिये कि मनुष्य जाति में भाग्य में अभी ऐसे ऐसे और भी युद्धों का देखना बदा है ।

सच्ची शान्ति की भावना करनी हो तो उस

युद्धों की जननी है। पारिवारिक, सामाजिक, जातिगत, धार्मिक और राजनैतिक युद्धों का मूल कारण दूसरों के हितों की परवा न करके अपना स्वार्थ साधन करना है। यह नीति जहां भी काम कर रही होगी वहीं कलह उत्पन्न होगा। संकीर्ण दायरे में सोचने वाले विचारक अपने देश या जाति के लाभ के लिए दूसरे देश या जाति के स्वार्थों की अवहेलना करने लगते हैं तो उसकी प्रतिक्रिया बड़ी दुखदायी और अशान्ति कारक होती है। यह आवश्यक नहीं कि अपने को सुखी बनाने के लिए दूसरों को लूटा खसोटा ही जाय। इस रीति से यदि कोई सम्पन्न बन भी जाय तो वह सम्पन्नता उसके लिए अन्ततः दुखदायी ही होती है। समानता, एकता, प्रेम, सहयोग, उदारता और बन्धु भावना के आधार पर सब देशों के मनुष्य आपस में मिलजुल कर रह सकते हैं एक दूसरे के सुख को बढ़ाने में सहायक हो सकते हैं।

इन दुखदायी युद्धों को रोकने के लिए मनुष्य मात्र में उदारता और प्रेम की भावना का विस्तार करना होगा, देश और जाति के छोटे दायरे में सोचने की अपेक्षा समस्त मानव जाति के हित अहित की दृष्टि से विचार करना होगा। "हम सुखी रहें और सब चाहे जैसे रहें" यह घातक नीति अनेक विभ्राट उत्पन्न करती है। सबके सुख में जो अपना सुख तलाश किया जाता है वही सुख वास्तविक और टिकाऊ होता है। अब समय आगया है कि मानव जाति में प्रेम एकता और समानता का जोरों से प्रचार किया जाना चाहिए। आत्मत्याग, उदारता और परमार्थ का आचरण करने के लिए जनसाधारण को प्रोत्साहित किया जाना चाहिए। जन साधारण के विचार ऐसे परिपक्व होने चाहिए कि उसी विचार धारा की सरकारें कायम हों, शासन सूत्र के संचालकों को उसी नीति का अवलम्बन करना पड़े।

सिपाही, सिपाहियों को परास्त कर सकते हैं, तोपें तोपों को तोड़ सकती है, परन्तु युद्ध से युद्ध को समाप्त नहीं किया जा सकता। आग से आग को नहीं बुझाया जासकता इसी प्रकार क्रोध, ईर्षा, घृणा, द्वेष, शोषण या दमन से कलह के दावानल को शान्त नहीं किया जा सकता। इसके लिए तो प्रेम का अमृत मय जल चाहिए। उदारता आत्मत्याग, और परमार्थ की मनोवृत्ति ही युद्धों का अन्त कर सकती है। विश्व की समस्त विवेकवान् आत्माओं को अखण्डज्योति आह्वान करती है कि सत्य प्रेम और न्याय के शस्त्रों द्वारा मनुष्य जाति में फैली हुई स्वार्थपरता और दुर्भावना को परास्त करो, विना इस जीत के—युद्ध की जीत का—कोई महत्व नहीं है।

———

तुम जो दूसरे से चाहते हो, वही दूसरे को पहिले दो, तब तुम्हें अनन्त गुणा होकर वही मिलेगा। सेवा चाहते हो तो सेवा करो, मान चाहते हो तो मान दो। यश चाहते हो तो यश दो। ठीक समझ लो दुःख देते हो तो बदले में तुम्हें दुःख ही मिलेगा, अपमान करते हो तो बदले में तुम्हें अपमान ही मिलेगा। जो तुम दोगे वही तुम्हें मिलेगा।

× × ×

बुद्धिमान बनने का तरीका यह है कि आज हम जितना जानते हैं भविष्य में उससे अधिक जानने के लिए निरंतर प्रयत्न शील रहें।

× × ×

बुरे कर्म का फल अच्छा हो ही नहीं सकता, बुरा कर्म करते हुए जो किसी को फलता फूलता देखा जाता है वह उसके उस बुरे कर्म का फल नहीं है, वह तो पूर्व के किसी शुभ कर्म का फल है जो अभी प्रकट हुआ है। अभी जो वह बुरा कर्म कर रहा है उसका फल तो आगे चल कर मिलेगा।

मिथ्या भय मत करो।

(डा० रामचरणजी महेन्द्र, एम. ए. डी. लिट्)

आत्महीनता से मुक्ति के उपाय–

नब्बे फीसदी व्यक्ति किसी काल्पनिक डर से क्लान्त रहा करते हैं। "हम कुछ नहीं, क्षुद्र हैं, दीन हीन हैं दूसरे हमसे उत्तम हैं, बड़े हैं, सर्वगुण सम्पन्न हैं।" ऐसी भावना ही उन्हें विदग्ध किया करती है। ये सब मिथ्या कल्पनाएँ हैं। ऐसी भय सूचक कल्पनाएँ अन्तःकरण की समस्त उत्तम योजनाओं को क्षण भर में धूल में मिला दिया करती हैं।

भय जीवन का सबसे बड़ा शत्रु है। यह एक ऐसा महाराक्षस है जिसकी कल्पना मात्र से हजारों जीवन बर्बाद हो रहे हैं तथा समय से पूर्व ही काल के ग्रास बन रहे हैं। जिस प्रकार तेज आँधी वर्षा कोमल पुष्प, पोधों, कलिकाओं को नष्ट भ्रष्ट कर डालती हैं उसी प्रकार भय रूपी दानव की कल्पनाएँ अबोध, अविकसिक हृदयों पर अपनी काली परछांहीं डालकर सदैव के लिए उन्हें बरबाद करती है।

भय हमारी अज्ञानता का सूचक है। ज्यों ज्यों मानवमन् में अज्ञानता का अंधेरा बढ़ता है त्यों त्यों मनुष्य अपना विकृत स्वरूप देखता है। उसका वास्तविक सिंह जैसा बहादुर व्यक्तित्त्व अंधकार के बोझ से विलीन सा हो जाता है। अत्यन्त खेद का विषय है कि अज्ञानीजन केवल अपने तक ही दुःख, दर्द चिता, कायरता, संकोच, लज्जा, अविश्वास के विचार सीमित नहीं रखते प्रत्युत अपने आस पास के पड़ौसियों, अपने मित्रों, यहाँ तक कि अपने बच्चों तक में वैसे ही अधोगामी संस्कार दृढ़ कर देते हैं और इसका दुष्परिणाम उन बेचारों को पूर्ण जीवन भर भुगतना पड़ता है। कायरता, तथा भय हमारे मानसिक विकास में बाधा पहुंचाने वाले हैं। ये हमारी तुलनात्मक शक्तियों को विकृत कर देता है।

अपना दृष्टिकोण बदल दीजिये—

अभी तक आप मन को अप्रीतिकर (Unpleasant) अस्वास्थ्य कर, तथा चिंता के विचारों में लगाये रहे हैं। इस प्रकार के डरपोक विचारों द्वारा तुमने भय के वातावरण की सृष्टि करली है। विचार एक महाशक्तिशाली चुम्बक है। यह वैसी ही वस्तुएँ वायुमंडल से आकर्षित करेगा जैसा यह स्वयं है। अतः हमें उचित है कि मन को जीवन के अप्रीतिकर पहलुओं से सदा सर्वदा के लिए हटा लें। उधर की बातें सोचें ही नहीं। जब मनुष्य का दृष्टिकोण बदल जाता है तो वह लज्जा तथा संकोच के स्थान पर विश्वास तथा श्रद्धा से कार्य लेता है, कायरता बदल कर वीरत्व का तेज धारण कर लेता है ग्लानि के स्थान पर भविष्य की उज्ज्वल आशा से प्रकाशित हो जाता है।

प्रिय पाठक! तनिक सोचिए; विचार कर देखिए – यदि आप उम्र भर दूसरों से डरते ही रहेंगे, स्वयं अपने आप को नहीं सम्हालेंगे, अपनी आत्मिक शक्तियों की प्रकाशित नहीं करेंगे, तो आपका ठौर ठिकाना कहां रहेगा? कौन तुम्हें पूछेगा? तुम क्या कर सकोगे?

आपको चाहिए कि फजूल के डरों, कल्पित चिंताओं तथा कुविचारों को हृदयकेन्द्र से सदा के लिए वहिंगत कर दें। अपने आजूबाजू निर्भयता तथा निश्चिन्तता के वातावरण की सृष्टि करें। लोगों से कहें कि वे भी हमारी तरह किसी से भयभीत न हों। पुराने आक्रमणों, दु:खदायी प्रसंगों, तथा अंधकार पूर्ण घटनाओं को सदा के लिए भूल जाय। मन को भविष्य के दुःख की गड़बड़ी में न पड़ने दें।

भय के विचार हमें उद्विग्न कर देते हैं। कुछ

कर्तव्य का मार्ग नहीं दीखता। अन्त: करण की समस्वरता (Mental Harmony) नष्ट हो जाती है। हमें अच्छा भी बुरा मालूम होने लगता है हम अपनी मुसीबतों को स्वयं बना डालते हैं।

दूसरे क्या सोचते हैं ?

आप इस पचड़े में न पड़िये कि दूसरे आपके विषय में क्या विचार रखते हैं ? क्या क्या कहते हैं, तथा उन्होंने आपको कैसा समझा है ? आप यह क्यों सोचते हैं कि आपके विषय में उनके विचार उत्तम नहीं हैं, या वे आपकी आलोचना करने में संलग्न रहते हैं। यदि आप थोड़ी देर के लिए यही सोच लें कि वे हमारे विषय में बड़ी उत्तम धारणाएँ रखते हैं, हमें ऊँचा समझते हैं, हमारे गुणों पर दृष्टि रखते हैं। वे हमारे विषय में कोई भी बुरी बात नहीं सोच सकते क्यों कि हम वैसे हैं ही नहीं, हम तो उन्नति के लिए जन्मे हैं और प्रत्येक दिन कुछ न कुछ उन्नति कर रहे हैं। सुभावनाओं को मनोमन्दिर में सजा रहे हैं तथा महत्त्वपूर्ण विचारों के चिंतन में ही संलग्न रहते हैं।

जो व्यक्ति दूसरों के विचारों, मन्तव्यों, तथा टीका टिप्पणी पर निर्भर रहता है वह सदैव नीचे गिरता है। लोगों के हाथों का खिलौना बन जाता है। ज़रा ज़रा सी बात में संसार के स्वार्थी पुरुष उसे नाच नचाते हैं। पागल बताते हैं।

लोगों की हँसी की ओर ध्यान न दीजिए—

सर्वोत्कृष्ट सिद्धान्त यही है कि आप लोगों की आलोचना की ओर से नेत्र मूंद लो। यदि कोई तुम्हें चिढ़ाये, बुरा भला कहे और तुम उसकी ओर ध्यान न दो तो हँसी करने वाले को बड़ा दुःख होता है। कटुवाक्य उलट कर उसी का हृदय बेधते हैं।

हमें दुनियां में निवास करना है, यहाँ हँसी उड़ाने वाले थोड़े बहुत सदैव रहेंगे। आज चार हैं तो कल आठ हो जाय या संभव है दो हो जॉय। वाले की धमकी से भयभीत हो विक्षुब्ध होने का कोई प्रयोजन नहीं। संसार ने, इस परम स्वार्थी दुनियां ने, अच्छे से अच्छे व्यक्ति की आलोचना की, तथा खूब हँसी उड़ाई है। यहां तक की इतने श्रेष्ठ प्रभु श्रीरामचन्द्रजी जो एक बचनी, एक पत्निव्रत धारण करने वाले थे, वे भी लोगों की हँसी का कारण बने। श्रीकृष्ण भक्त, सत्य-वचनी धर्मराज युधिष्ठिर की भी हँसी उड़ाने में लोगों ने कमी नहीं की। महाराज शिवाजी ने बाल्यावस्था से ही स्वतन्त्रता का आन्दोलन प्रारंभ किया था। उस समय उनके घरवाले तक उनकी हँसी उड़ाते थे। नौकरी तथा दासत्व का मार्ग छोड़ स्वतंन्त्र कार्य करने का निश्चय सुन कर कितने ही लोगों ने लोकमान्य तिलक की कम हँसी नहीं उड़ाई। विज्ञान वेत्ताओं, तत्त्व वेत्ताओं तथा प्रसिद्ध व्यक्तियों के जीवन में एक अवसर ऐसा अवश्य आया जब उनकी खूब अवहेलना की गई किन्तु वे कर्त्तव्य पथ पर स्थिर रहे।

संसार की बंदरघुड़की—

बंदर जैसे दूर से घुड़की देकर तुम्हें डराना चाहता है किन्तु यदि तुम उसका सामना करने हो, तो उलटे पांव भागता है, उसी प्रकार की मनोवृत्ति संसार की है। दूर दूर से लोग तुम्हारी हँसी उड़ाते हैं किन्तु जब तुम उनका विरोध करते हो तो वे दूर भाग खड़े होते हैं। दूर दर्शिता से विचार करो। स्वार्थी मनुष्यों की हँसी के फंदे में पड़ कर भय के बंधन में न पड़ो। जब कभी ऐसा अवसर सामने आवे तो दृढ़ निश्चय से काम लो। लोगों को हँसने दो, गला फाड़ने दो किन्तु तुम अपने अटल उद्देश्य में प्रवृत्त रहो। जनता की मनोवृत्ति का थोथापन पहिचानो।

साहस हमेशा बाज़ी मारता है—

साहस को देखकर भयभीत होता है और भाग खड़ा होता है। आप साहस से मित्रता कर लीजिए

गायत्री का अर्थ पूर्ण संदेश।

(गतांक का शेषांश)

भर्गो-पापनाशक। संसार में मैल निरन्तर पैदा होते रहने का नियम है। गति शीलता के साथ मल उत्पन्न होने का घनिष्ट सम्बन्ध है। शरीर में जब तक जीवन है, छिद्रों द्वारा मल निकलते रहने का क्रम भी जारी रहेगा। अवतार या देव दूतों के आने से संसार पवित्र होजाता है परन्तु फिर उसमें मैलों की वृद्धि होने लगती है। मन का भी यही स्वभाव है, नित्य उसमें नये मल उत्पन्न होते रहते हैं। इन मैलों का नाम ही पाप है। इन पापों को नित्य हटाते रहना हमारे दैनिक कार्यक्रम में शामिल होना चाहिये। एक बार सफाई कर देने से एक बार पवित्रता स्थापित कर देने से ही काम नहीं चल सकता क्योंकि सृष्टि के नियमानुसार मल की उत्पत्ति कभी बन्द नहीं हो सकती। सफाई के दूसरे क्षण बाद ही मल उत्पन्न होने शुरू हो जाते हैं। इसलिये मलों की सफाई की ओर, उनको हटाने, नाश करने की ओर, सदा सतर्कता पूर्वक प्रयत्न जारी रखना चाहिये। मन को जरा ही ढील मिली कि कुविचार आये, जीवन पर से जरा सा अंकुश हटाया कि दुष्कर्मों की ओर प्रवृत्ति हुई, शरीर की ओर जरा सी लापरवाही की कि बीमारियों का प्रकोप हुआ। इसी प्रकार समाज की सामूहिक या व्यक्तिगत बुराइयों, बदमाशियों की ओर से निगाह चूकी कि उनका आक्रमण अपने ऊपर हुआ। पापों की सेना क्षण क्षण में चारों ओर से अपने ऊपर आक्रमण करती है. इन आक्रमणकारियों से निरंतर युद्ध जारी रखने का ही गीता ने १८ अध्यायों में उपदेश है। गायत्री ने एक शब्द 'भर्गो' के द्वारा हम से कहा है कि पापों से सावधान रहो, उनके आक्रमण से सतर्क रहो और इन दुष्टों का नाश

देवस्य—देने वाला-दिव्य। यह गुण सर्वोपरि है यदि तरह तरह की योग्यताएँ, शक्तियां, सामर्थ्य मनुष्य में हों परन्तु उनका उपयोग और किसी को कुछ न मिलता हो तो वह निष्फल है। समुद्र के गर्भ में लाखों मन रत्न भरे पड़े हैं, जमीन के अन्दर लाखों मन सोना दबा पड़ा है पर यदि वह किसी के काम नहीं आता तो उसके होने न होने से किसी को क्या प्रयोजन ? शक्ति और योग्यता की शोभा उसके बांटने में है। देने वाले को देवता कहा जाता है। यह देना-दिव्य होना चाहिये, जिससे सुख शान्ति की वृद्धि हो। पाप तापों के दुःखदायी परिणाम उपस्थित करने वाले उपहार तो असुर भी दिया करते हैं-देवता दिव्य वस्तु देते हैं। सद्ज्ञान सर्व श्रेष्ठ दिव्य वस्तु है अपने विचार और कार्यों द्वारा दूसरों को ऐसे मार्ग पर चलने के लिये प्रेरणा देनी चाहिये जिससे वे सत् की ओर कदम बढ़ावें। वह वाणी निरर्थक है जिसके पीछे आचरण का बल न हो,दूसरों को सन्मार्ग पर चलने की प्रेरणा,शिक्षा, जितनी वाणी या लेखनी द्वारा दी जाती है उससे कई गुनी अधिक आचरण द्वारा दी जा सकती है। आचरण ऊंचे बनाने चाहिये, दूसरों को अच्छी, ऊंची, सत्पथ गामी सलाह देनी चाहिये, संसार में सुख शान्ति को, सत्य, धर्म को, बढ़ाने के लिये जितना कुछ भी परिश्रम अपने से किया जा सके करना चाहिये। सेवा-जीवन का सर्व श्रेष्ठ पुनीत काम है, अपने आपे की तथा दूसरों की सेवा करना हमारे हर एक काम में रहे तो हम दिव्य-देने वाले देवतत्व को धारण कर सकते हैं।

धीमहि—धारण करें। केवल तोते की तरह रटें नहीं, वाचक ज्ञानी न बनें। लम्बी चौड़ी हांकने वाले परोपदेश में पाण्डित्य दिखाने वाले, सिंह की खाल ओढ़ कर अपने असली ढांचे को छिपाये रखने वाले सियार, इस दुनियां में बहुत हैं। धर्म ग्रन्थों को वर्षों तक घोट घोट कर पीने वाले, नित्य

ऐसे होते हैं जिनका अन्तःकरण बड़ा मैला होता है। उनकी गुप्त करनी-प्रकट कथनी के बिलकुल विपरीत होती है। ऐसी बंचकता दुनिया में स्वार्थ सिद्धि के लिये किसी हद तक कारगर भले ही हो पर यथार्थ में वह व्यर्थ है, उसका कुछ भी महत्व नहीं है। आत्मा पर संस्कार वाचालता से नहीं पड़ते वरन् श्रद्धा एवं विश्वास से पड़ते हैं। सत्-मार्ग की श्रेष्ठता पर इतनी गहरी श्रद्धा होनी चाहिये कि उसका लोभ कभी त्यागा ही न जा सके। असत्-मार्ग से इतनी घृणा होनी चाहिये कि उधर आंख उठा कर देखने को भी कभी जी न करे। गहरे अन्तराल में हृदय के अन्तरग गह्वर में दुःख नाशक, सुख स्वरूप, तेजस्वी, श्रेष्ठ, पाप नाशक, दिव्य, प्राण स्वरूप ब्रह्म की धारणा होनी चाहिये। गायत्री माता हम मनुष्यों को उपदेश करती है कि—पुत्रो! ऐसी ही धारणा करो, आत्माओ! अपने वास्तविक रूप में, आत्म भाव में, अवस्थित हो ओ! तभी तुम्हारा जीवन-लक्ष पूरा होगा।

इस उपरोक्त महान् अनुष्ठान की साधना के लिये क्या कार्य करना चाहिये? किस प्रकार यह सब सम्भव है? इस प्रश्न का उत्तर गायत्री के अन्तिम चरण में दिया हुआ है—'धियो यो नः प्रचोदयात्'' इस पद में बुद्धि को प्रेरणा देने की बात कही गई है। कल्पना की तरंगों में अनेक व्यक्ति आकाश में उड़ते फिरा करते हैं। वाचालता की तरह यह काल्पनिकता भी दिल बहलाने की वस्तु है। उपरोक्त ब्राह्मी स्थिति को प्राप्त करने के लिये कल्पना मात्र करके न रह जाना चाहिये वरन् बुद्धि का उपयोग करना चाहिये। बुद्धि में प्रेरणा होनी है। बुद्धि वह तत्व है जिसकी प्रगति जिस भी दशा में हो जाती है उधर ही मोर्चे पर मोर्चे फतह करती चलती है। यह तलवार जिस क्षेत्र में उतर पड़ती है उधर ही रास्ता साफ करती चली जाती है। जीवन के जिस क्षेत्र में भी मनुष्य अपनी बुद्धि

प्राप्त करता है। छोटे छोटे आदमियों ने इस संसार में बड़े २ काम किये हैं, इन सफलताओं का रहस्य यह है कि उन्होंने अपनी बुद्धि को एक निश्चित मार्ग में जुटा दिया था। एकाग्र होकर जिस मार्ग में भी इच्छा शक्ति को लगाया जाता है उधर ही सफलता देने वाले अनेकों उपाय प्राप्त होने लगते हैं। ब्राह्मी स्थिति प्राप्त करने के लिये भी बुद्धि की प्रेरणा आवश्यक है। स्वामी विवेकानन्द जी महाराज कहा करते थे कि "जितने मनोभोग और परिश्रम में एक विद्यार्थी मैट्रिक पास करता है उतने ही प्रयास से एक साधक परमात्मा को प्राप्त कर सकता है।" बुद्धि का ऐसा ही चमत्कार है कि वह कठिन कार्यों को हल कर सकती है, फिर परमात्मा का प्राप्त करना तो एक सरल कार्य है क्योंकि वह वास्तविक, स्वाभाविक, सच्चा और आवश्यक है। इस प्रकार के सच्चे कार्य सदा सरल ही होते हैं।

अपनी बुद्धि को अपने अन्दर प्राण शक्ति भरने के कार्य पर जुटाना चाहिये। यही सच्ची साधना है। अपनी आध्यात्मिक स्थिति को ऊंचा करने, सात्विक सद्गुणों को धारण करने, का प्रयास जब सद्बुद्धि द्वारा आरम्भ होता है तो स्वल्पकाल में ही आत्मा-परमात्मा के निकट पहुंच जाता है और लौकिक एवं पारलौकिक अनेक सिद्धियां उसके करतल हो जाती हैं। इस जीवन में ही वह स्वर्ग और मोक्ष के आनन्द का रसास्वादन करने लगता है। गायत्री माता की उपासना के वरदान से उसके लिये कोई भी आवश्यकता अपूर्ण नहीं रह जाती।

गायत्री में ईश्वर प्रार्थना भी है। परमात्मा से याचना करने योग्य केवल एक ही पदार्थ है—"वह हमें सद्बुद्धि प्रदान करे। शेष सांसारिक पदार्थ तो अपने पुरुषार्थ से उपार्जन किये जा सकते हैं या अपनी मनोभूमि को ऐसा बनाया जा सकता है कि उन पदार्थों के बिना भी काम चल सके।

विवेक की तराजू पर तौलिए

(श्री स्वामी विवेकानंद जी)

जो यह कहते हैं कि विवेचक बुद्धि की तराजू पर धर्म को तौलना मूर्खता है, वे निश्चय अदूर दर्शी हैं। मान लीजिये, एक ईसाई किसी मुसलमान से इस प्रकार झगड़ रहा है "मेरा धर्म प्रत्यक्ष ईश्वर ने ईसा से कहा है" मुसलमान कहता है "मेरा धर्म ईश्वर-प्रणीत है।" इस पर ईसाई जोर देकर बोला- "तेरी धर्म पुस्तक में बहुत सी झूठी बातें लिखीं हैं, तेरा धर्म कहता है कि हर एक मनुष्य को सीधे से नहीं तो जबरदस्ती मुसलमान बनाओ। यदि ऐसा करने में किसी की हत्या भी करनी पड़े तो पाप नहीं है। मुहम्मद के धर्म प्रचारक को स्वर्ग मिलेगा।" मुसलमान ने कहा—"मेरे धर्म में जो लिखा है सो सब ठीक है।" ईसाई ने उत्तर दिया—"ऐसी बातें मेरी धर्म पुस्तक में नहीं लिखी हैं, इससे वे झूठी हैं" मुसलमान झल्लाकर बोला—"तेरी पुस्तक से मुझे क्या प्रयोजन है" काफिरों को मार डालने की आज्ञा को झूठ कहने का तुझे क्या अधिकार है? तेरा कथन है कि ईसाई का लिखा सब सच है, मैं कहता हूं मुहम्मद जो कुछ कह गये हैं, वही ठीक है" इस प्रकार के प्रश्नोत्तरों से दोनों को लाभ नहीं पहुंचता। एक दूसरे की धर्म पुस्तक को बुरी दृष्टि से देखते हैं इससे वे निर्णय नहीं कर सकते कि किस पुस्तक के नीततत्व श्रेष्ठ हैं। यदि विवेचक बुद्धि को दोनों कामों में लावें तो सत्य वस्तु का निर्णय करना कठिन न होगा। किसी धर्म पुस्तक पर विश्वास न होने पर भी उसमें लिखी हुई किसी खास बात को यदि विवेचकबुद्धि स्वीकार करले तो तुरन्त समाधान हो जाता है। हम जिसे विश्वास कहते हैं वह भी विवेचक बुद्धि से ही उत्पन्न हुआ है। परन्तु यहां पर यह प्रश्न उठता है कि दो महात्माओं के कहे हुए जुदे जुदे या परस्पर विरुद्ध विधानों की परीक्षा करने की शक्ति हमारी विवेचक बुद्धि में है या नहीं? यदि धर्मशास्त्र इन्द्रियातीत हो और उसकी मीमांसा करना हमारी शक्ति के बाहर का काम हो तो समझ लेना चाहिये कि पागलों की व्यर्थ बक बक या झूठी किस्सा कहानियों की पुस्तकों से धर्म शास्त्र का अधिक महत्व नहीं है। धर्म मानवीय अन्तःकरण के विकास का ही फल है। अन्तःकरण के विकास के साथ साथ धर्ममार्ग चल निकले हैं। धर्म का अस्तित्व पुस्तकों पर नहीं किन्तु मानवीय अन्तःकरण पर अवलम्बित है। पुस्तकें तो मनुष्यों की मनोवृत्तियों के दृश्यस्वरूप मात्र हैं। पुस्तकों से मनुष्यों के अन्तःकरण नहीं बने हैं किन्तु मनुष्यों के अन्तःकरणों से पुस्तकों का आविर्भाव हुआ है, मानवी अंतः करण का विकास 'कारण' और ग्रंथ रचना उसका 'कार्य' है। विवेचक बुद्धि भी उसी विकास का 'कार्य' है, 'कारण' नहीं। विवेचक बुद्धि की कसौटीपर रखकर यदि हम कोई कार्य करेंगे तो उसमें धोखा नहीं उठाना

जिसकी सतबुद्धि होती है उस पर परमात्मा प्रसन्न रहता है।

गायत्री में बहुवचन का प्रयोग हुआ है। 'मेरी बुद्धि को प्रेरित कीजिये, ऐसा नहीं है वरन—हमारी बुद्धि को प्रेरित कीजिये, ऐसा है। मनुष्य को 'मैं' एकांगी' 'अकेला' की स्वार्थ मयी दृष्टि रख कर अपने को सकुचित नहीं बनाना चाहिये वरन् 'हम सब' के स्वार्थ की उदार दृष्टि से हर बात पर विचार करना चाहिये। जिसमें सबका लाभ हो उसमें अपना लाभ और जिसमें सबकी हानि हो उसमें अपनी हानि समझनी चाहिये। अपने को समाज का एक अंग मानना, आत्मा को परमात्मा का एक भाग मानना, खुदी को खुदा में जोड़ना ही सच्ची आध्यात्मिकता है। जैसे जैसे गायत्री की अनुपम शिक्षाओं पर आप विचार करेंगे वैसे ही वैसे [illegible]

प्रभु की इच्छा पूर्ण करो।

(जोसफ मेजिनी)

इस बात को मत भूलना कि सार्वजनिक उन्नति करना ही हमारा उद्देश्य है, अर्थात् मनुष्य जाति के सब अगों में अधिक गहरा और अधिक फैला हुआ मेल जोल उत्पन्न करके अपने आपको तथा दूसरों को धार्मिक उच्चभावों की सीमा तक पहुँचाना ही हमारे जीवन का उद्देश्य है, बिना इसको पूरा किये हम कभी विश्राम न लेंगे।

इस पृथ्वी पर तुम इसलिये भेजे गये हो कि ईश्वर का एक नगर बसाओ उसमें सार्वजनिक कुटुम्ब की स्थापना करो। इस महान् कार्य सम्पादन करने के लिये तुमको लगातार परिश्रम और उद्योग करने की आवश्यकता है।

जब तुम में से प्रत्येक, मनुष्य मात्र को भ्रातृ दृष्टि से देखने लगेगा और सब आपस में एक कुटुम्ब का सा आचरण करने लगेंगे, प्रत्येक मनुष्य अपनी भलाई दूसरों की भलाई में समझेगा, अपने जीवन को सबके जीवन के साथ और अपने लाभ को सब के लाभ के साथ मिलावेगा, जब हर एक मनुष्य इस संयुक्त कुटुम्ब के लिये स्वार्थत्याग करने पर उद्यत होगा और वह कुटुम्ब किसी व्यक्ति को भी अपने से पृथक् न समझेगा, उस समय वे बहुत सी बुराइयां जो अब मनुष्य जाति के दुःख और उद्वेग का कारण हो रही हैं, उसी प्रकार शांत हो जावेंगी, जिस प्रकार सूर्योदय के होते ही निविड़ तमो राशि छिन्न भिन्न हो जाता है। तभी ईश्वर की इच्छा पूर्ण होगी। क्यों कि उसकी यह इच्छा है कि मनुष्य जाति के बिखरे हुये अंग प्रेम के द्वारा आपस में मिलजुल कर धीरे धीरे एक हो जायें और जिस प्रकार वह आप एक है उसी प्रकार उसकी सन्तान भी एक ही होजाये।

जीवन संग्राम में डटे रहो।

(महात्मा जेम्स ऐलन)

निश्चल और सुस्त जीवन में पड़े पड़े लोग निश्चेष्ट और डरपोक हो जाते हैं। शत्रु पर विजय प्राप्त करने के लिये जो प्रयत्न किये जाते हैं उनका आनन्द ऐसे मनुष्यों को स्वप्न में भी दुर्लभ है। 'संग्राम का आनन्द' इस वाक्यको सुनकर ऐसे लोग भौंचक से रह जाते हैं; परन्तु सच पूछो तो इस अकर्मण्यता का छा जाना ही मृत्यु का निशान है। समझ लेना चाहिये कि ऐसे मनुष्यों की मृत्यु अब निकट ही है। यदि जड़ संसार की ये बातें सत्य हैं तो चैतन्य संसार में भी इन्हें सत्य समझो। विचार शील मनुष्य यदि अपने हृदय में देखे तो उसे महाभारत का सच्चा दृश्य दिखाई दिये बिना न रहेगा। पापबासनाओं और आत्मिक शक्तियों का घोर संग्राम मानव हृदय में सदैव ही मचा रहता है। दुर्बल आत्मा वासनाओं से पराजित होकर उनके दास बन जाते हैं। इसके विपरीत बलवान आत्मा इन वासनाओं को पराजित कर उन्हें अपने काबू में रखते हैं। इस घोर युद्ध में विजय प्राप्त करने का अनुपम आनन्द उन्हीं विजयी आत्माओं को प्राप्त होता है।

जो मनुष्य अपनी वर्तमान स्थित से संतुष्ट हो अकर्मण्य बन रहे हैं उन लोगों से न तो कुछ लौकिक उन्नति ही हो सकती है और न पारलौकिक ही। उन्नति का मूलमंत्र यही है कि मनुष्य के हृदय में असंतोष हो। अपनी वर्तमान स्थिति में जो २ दोष हैं, जो जो असुविधायें अथवा तकलीफें हैं उनसे हृदय में जब तक सच्चा असंतोष न पैदा हो जाय तब तक उन्नति की कल्पना ही नहीं हो सकती। जब तक हम लोग अपने अवनत और गिरे हुए चरित्र को देख उससे असुंतुष्ट होकर उसकी उन्नति का उपाय न करेंगे तब तक सुख की बातें कोसों

शैतानी आदत।

(श्री स्वामी सत्यदेवजी परिव्राजक)

कोलम्बस के नई दुनियां दरयाफ्त करने से पहिले पुरानी दुनियाँ के निवासी तम्बाकू का नाम भी नहीं जानते थे। सन् १४९२ ईसवी के नवम्बर मासमें जब कोलम्बस में 'क्यूबा' टापू ढूँढ़ निकाला तो उसने अपने कुछ साथियों को इस टापू के जंगली निवासी का हाल चाल जानने के लिये भेजा। कोलम्बस के साथी जब उस टापू के अन्तरीप भाग में पहुँचे तो वहीं उन्होंने जंगली वासिन्दो के मुंह और नाक से धुआं निकलते देखा। यह देखकर उनको बड़ा विस्मय हुआ। लौटकर उन्होंने अपने सर्दार को इसकी सूचना दी और कहा कि काले २ 'क्यूबा' निवासी नंगे घूमते हैं और बड़े बड़े पत्तों को लपेटकर, उनका एक सिरा जला दूसरे को मुंह में रख शैतानों की तरह धुआं निकालते हैं।

यही इस 'शैतानी आदत' का आरम्भ समझिये। कोलम्बस उन पत्तों को अजीब चीज समझ कर म्यूजियम में रखने के लिये उन्हें यूरोप ले गया, वहां कुछ बेवकूफ निठल्ले स्पेन के अमीरों ने उस जंगली आदत का मजा देखना चाहा, बस फिर क्या था, नकलची लगे नक़ल करने! 'धूम्र पान' एक नया फैशन बन गया।

१४९४ ईसवी में जब कोलम्बस ने दुबारा अमेरिका की यात्रा की तो उसके साथियों ने वहां की जंगली जातियों को तम्बाकू सूंघते देखा। उसकी चर्चा भी यूरोप में पहुँची। वहाँ के अमीर समाज की स्त्रियों ने दिल्लगी के तौर पर आपस में सूंघनी का प्रयोग आरम्भ कर दिया। भरी समाज में जब छींको की झड़ी लग जाती तो देखने वालों के पेट बल पड़ जाते। धीरे धीरे यह दिल्लगी चीज बन गई और तम्बाकू सूंघना एक नया फैशन हो गया।

१५०३ ईसवी में जब स्पेनिश लोग 'पेरागुआ' विजय करने के लिये गये तो वहां के निवासियों ने एक बड़ी संख्या में उनका सामना किया। बड़े जोर से ढोल बजाते हुए, पानी फेंकते हुए तथा तम्बाकू चबाते हुए वे हमला करते थे। निकट आने पर उन्होंने तम्बाकू के रस का प्रयोग स्पेनिश सिपाहियों को अंधा करने के लिये किया। उस जमाने में हाथापाई की लड़ाई अधिक प्रचिलित थी, इसलिये तम्बाकू चबाने वाला बड़ी आसानी से अपने शत्रु की आँखों में तम्बाकू का रस थूक सकता था। उन जंगली जातियों के लिये स्वत्व-रक्षा का यह एक अच्छा साधन था। जब स्पेनिश लोग उस टापू को विजय कर अपने देश को लौटे तो उन्होंने तम्बाकू चबाने की चर्चा योरुप में फैलाई। यही इस भ्रष्ट आदत के प्रचार का संक्षिप्त इतिहास है।

अब योरुप के व्यापारियों के स्वार्थ सिद्ध करने की बारी आई। उन्होंने तम्बाकू के द्वारा रुपया कमाने का बड़ा अच्छा अवसर देखा। अपने ऐजन्टों को अमेरिका भेज कर उन्होंने तम्बाकू से लदे हुए जहाज मंगाये और तरह तरह के चटकीले विज्ञापनों द्वारा उस जँगली वस्तु का जनता में प्रचार बढ़ाना आरम्भ किया। नये २ मनमोहक हुक्कों का अविष्कार होने लगा, तम्बाकू में खुशबू भी मिलाई जाने लगी. उसके नशे की प्रशंसा में कवियों ने कवितायें भी लिख डालीं।

योरुप की 'नकटी सभ्य समाज' ने यहीं तक बस नहीं किया बल्कि उसने उस जंगली आदत का प्रचार एशिया में भी करने की कमर कसी। क्यों न हो, आप तो डूबे ही थे अपने स्वार्थ के लिए दूसरों को भी साथ ही डुबाना चाहा। स्वार्थ से अन्धे होकर उन्होंने इस का प्रचार भारतवर्षमें बढ़ाया धन लोलुप योरोपियन कम्पनियों ने सुन्दर स्त्रियों के छोटे २ चित्र

शैतानी वस्तु का प्रचार जनसाधारण में किया अमरीका की जंगली जातियां जिस आदत में फँसी हुई थीं उसमें आज भारत के उच्च वर्णाभिमानी तथा जन साधारण डूबे हुए हैं। काशी के बड़े बड़े पंडित सूंघनी सूंघते हैं, बड़े २ कोट पतलून वाले लुक्का लगाये फिरते हैं, 'सूंघनी' वाले व्यापारी पत्र पत्रिकाओं में बड़ी शान के विज्ञापन देते हैं। गरीब मजदूर खों खों करते हुए भी इस गलीज वस्तु का प्रयोग करते हैं छोटे छोटे लड़के इन विषैले पत्तों का धूंआ लेकर अपने आपको धन्य मानते हैं। यह सब योरुप से आई हुई इस वर्बरता के फल हैं।

तम्बाकू एक बड़ा जहरीला पदार्थ है। आध सेर तम्बाकू में जितना जहर होता है यदि उसका पूरा प्रभाव मनुष्यों पर हो सके तो उससे तीन सौ आदमी मर सकते हैं। एक सिगरेट के पूरे प्रभाव से दो आदमियों की मृत्यु हो सकती है। तम्बाकू का रस खेती को हानि पहुंचाने वाले कड़ी को मारने के काम में आता है। अमरीका के कृषक लाखों मन तम्बाकू का रस इसी काम में लाते हैं। हाटन टाट के रहने वाले तम्बाकू के तेल से सांप मारने का काम लेते हैं। उस तेल के एक बूंद से काला नाग फौरन मर जाता है। माली तथा बागों के मालिक फलों के नाशक कीड़ों को मारने के लिए इसका प्रयोग करते हैं। यदि आप सिगरेट को खोल कर, पत्तों को चौड़ा करके, अपने पेट पर रख लें और कपड़े से बांध दें तो कुछ देर बाद उनके विष का प्रभाव आपको स्वयं मालूम हो जायगा।

जो तम्बाकू इतना जहरीला है उसके सेवन से निरोग मनुष्य पर क्या प्रभाव पड़ेगा? बुद्धिमान पाठक इसको स्वयं समझ सकते हैं।

——

एकान्त से ही प्रत्येक वस्तु का जन्म हुआ है। अकेला मनुष्य अधिक तेजी से चलता है।

भगवान बुद्ध के उपदेश।

एक दिन शील और ज्ञान के साथ जीना सौवर्ष के दुश्शील और असमाहित जीवन से अच्छा है।

—सहस्सवग्गो,

सौवर्ष के आलसी और हीन वीर्य जीवन की अपेक्षा एक दिन का दृढ़ कर्मण्यता का जीवन अच्छा है। —सहस्स वग्गो,

जिसके हाथ में घाव नहीं है वह उस हाथ में विष रख सकता है। जिसके मन में स्वार्थ नहीं है उसके लिए कुछ भी विषय अर्थात् पाप नहीं है।

—पापवग्गो,

जो शुद्ध, पवित्र, निर्दोष, पुरुष को दुख देता है, पाप उसी मूर्ख को लगता है। जैसे वायु की ओर फेंकी हुई धूलि अपने ही ऊपर आपड़ती है।

—पापवग्गो.

संसार उसे प्यार करता है जो शीलवान है, ज्ञानी है, धर्मात्मा है, सत्यवादी है और अपने निश्चित कार्य में लगा रहता है। —पियवग्गो,

क्रोध को छोड़ दे। घमंड को नष्ट कर दे। सब बन्धनों को काट दे। जो नाम और रूप से नहीं चिपटता और जो किसी को अपना नहीं कहता उसको दुख नहीं सताता। —कोध वग्गो,

क्रोध को प्रेम से जीते, दुष्ट को भलाई से जीते, लोभी को दान से जीते, और झूठे को सत्य से जीते।

—कोध वग्गो.

सच बोले, क्रोध न करे, जरूरत मंद को अपनी वस्तुऐं देदे, इन तीन बातों से मनुष्य देवताओं के निकट स्थान पाता है। —कोधवग्गो,

काया को कोप से बचा, काया को संयम में रख, काया को दुराचार से निकाल, और काया से अच्छे काम करे।

—कोधवग्गो.

मृत्यु की घड़ी।

मृत्यु किस प्रकार होती है? इस सम्बन्ध में तत्वदर्शी योगियों का मत है कि मृत्यु से कुछ समय पूर्व तो मनुष्य को बड़ी बेचैनी, पीड़ा और छटपटाहट होती है क्यों कि सब नाड़ियों में से प्राण खिंचकर एक जगह एकत्रित होता है, किन्तु पुराने अभ्यास के कारण वह फिर उन नाड़ियों में खिसक जाता है, जिससे एक प्रकार का आघात लगता है यही पीड़ा का कारण है। रोग, आघात या अन्य जिस कारण से मृत्यु हो रही हो तो उससे भी कष्ट उत्पन्न होता है। मरने से पूर्व प्राणी कष्ट पाता है चाहे वह जवान से उसे प्रकट कर सके या न कर सके। लेकिन जब प्राण निकलने का समय बिलकुल पास आ जाता है तो एक प्रकार की मूर्छा आ जाती है और उसे अचेतनावस्था में प्राण शरीर से बाहर निकल जाते हैं। जब मनुष्य मरने को होता है तो उसकी समस्त बाह्य शक्तियां एकत्रित होकर अन्तर्मुखी हो जाती हैं और फिर स्थूल शरीर से बाहर निकलतीहैं। पाश्चत्य योगियों का मत है कि जीवका सूक्ष्म शरीर बैंगनी रङ्ग की छाया लिये हुए शरीर से बाहर निकलता है। भारतीय योगी इसका रंग शुभ्र-ज्योति स्वरूप सफेद मानते हैं। जीवन में जो बातें भूलकर मस्तिष्क के सूक्ष्म कोष्टकों में सुपुप्त अवस्था में पड़ रहती हैं वे सब एकत्रित होकर एक साथ निकलने के कारण जागृत एवं सजीव हो जाती हैं। इसलिये कुछ ही क्षण के अन्दर जीव अपने समस्त जीवन की घटनाओं को फिल्म की तरह देख जाता है। इस समय मन को आश्चर्य-जनक शक्ति का पता लगता है। उनमें से आधी भी घटनाओं मानसिक चित्रों को देखने के लिये जीवित समय में बहुत समय की आवश्यकता होती पर इन क्षणों में वह बिलकुल ही स्वल्प समय में पूरी-पूरी जो सम्मिलित निष्कर्ष निकलता है वह सार रूप में संस्कार बनकर मृतात्मा के साथ हो लेता है। कहते हैं कि यह घड़ी अत्यन्त ही पीड़ा की होती है। एक साथ हजार बिच्छुओं के दंशन का कष्ट होता है। कोई मनुष्य भूल से अपने पुत्र पर तलवार चलादे और वह अधकटी अवस्था में पड़ छटपटा रहा हो इस दृश्य को देखकर एक सहृदय पिता के हृदय में, अपनी भूल के कारण प्राण प्रिय पुत्र के लिये ऐसा भयङ्कर काण्ड उपस्थित करने पर जो दारुण व्यथा उपजती है, ठीक वैसी ही पीड़ा उस समय प्राणी अनुभव करता है क्योंकि बहुमूल्य जीवन का अवसर उसने वैसा सदुपयोग नहीं किया होता जैसा कि करना चाहिये। जीवन जैसी अमूल्य वस्तु का दुरुपयोग करने पर उसे उस समय मर्मान्तिक मानसिक वेदना होती है। पुत्र के मरने पर पिता को शारीरिक नहीं मानसिक कष्ट होता है, उसी प्रकार मृत्यु के ठीक समय पर प्राणी की शारीरिक चेतनायें तो शून्य हो जाती हैं, पर मानसिक कष्ट बहुत भारी होता है। रोग आदि की शारीरिक पीड़ा तो मृत्यु से कुछ क्षण पूर्व ही जब कि इन्द्रियों की शक्ति अन्तर्मुखी होने लगती है तब ही बन्द हो जाती है। मृत्यु से पूर्व शरीर अपना कष्ट सह चुकता है। बीमारी से या किसी आघात से शरीर और जीव के बीच के बन्धन टूटने आरम्भ हो जाते हैं। डाली पर से फल उस समय टूटता है जब उसका डंठल असमर्थ हो जाता है। उसी प्रकार मृत्यु उस समय होती है जब शारीरिक शिथिलता और अचेतना आजाती है। ऊर्ध्व रन्ध्रों में से अक्सर प्राण निकलता है मुख, आंख, कान नाक प्रमुख मार्ग हैं। दुष्ट वृत्ति के लोगों का प्राण मल मूत्र मार्गों से निकलता देखा जाता है। योगी लोग कपाल, ब्रह्मरन्ध्र में से प्राण परित्याग करते हैं।

शरीर से जीव निकल जाने के बाद वह एक विचित्र अवस्था में पड़ जाता है। घोर परिश्रम से

करते ही निद्रा में पड़ जाता है। उसी प्रकार मृतात्मा को जीवन भर का सारा श्रम उतारने के लिये एक निद्रा की आवश्यकता होती है। इस नींद से जीव को बड़ी शान्ति मिलती है और आगे का काम करने के लिये शक्ति प्राप्त कर लेता है। यह नींद या तंद्रा कितने समय तक रहती है इसका कुछ निश्चित नियम नहीं है। यह जीव की स्थिति के ऊपर निर्भर है। बालकों को और कड़ी महनत करने वालों को अधिक नींद चाहिए, किन्तु बुड्ढे और आराम तलब लोगों का काम थोड़ी देर सोने से ही चल जाता है। साधारणतः तीन वर्ष की निद्रा काफी होती है। इसमें से एक वर्ष तक बड़ी गहरी नींद आती है, जिससे कि पुराना थकान मिटजाय और सूक्ष्म इन्द्रियां संवेदनाओं को अनुभव करने के योग्य हो जावें। दूसरे वर्ष उसकी तन्द्रा भंग होती है और पुरानी गलतियों के सुधार तथा आगामी योग्यता के सम्पादन का प्रयत्न करता है तीसरे वर्ष नवीन जन्म धारण करने की खोज में लग जाता है। यह अवधि एक मोटा हिसाब है। कई विशिष्ठ व्यक्ति छै महीने में ही नवीन गर्भ में आगये हैं, कई को पांच वर्ष तक लगे हैं। प्रेतों की आयु अधिक से अधिक बारह वर्ष समझी जाती है। इस प्रकार दो जन्मों के बीच का अन्तर अधिक से अधिक बारह वर्ष हो सकता है।

——

सात्विक सहायताऐं।

इस मास ज्ञान यज्ञ के लिये निम्न सहायताऐं सधन्यवाद प्राप्त हुईं।

३) श्री नन्दलालजी कोठानियां, जलपाईगुड़ी।
१) श्री हरीसिंहजी खेरी लखीमपुर।
१) श्री शिवराजजी दरोगा. फलोदी।
१) श्री नोनुप्रसादजी धुरियारी।
१) श्री किशन जी अग्रवाल राजनांद गांव।

——

जीवन का उच्च दृष्टिकोण।

(लेखिका—कु० कैलाशदेवी वर्मा)

आप अपने जीवन से क्या चाहते हैं? क्या सिर्फ जीना। खा पी कर दुनियाँ से कूंच कर जाना तथा अपना नामों निशां कुछ भी न छोड़ना—क्या आपने केवल यही सोचा है?

कितने ही व्यक्ति यह तक नहीं सोचते कि वर्ष में उन्हें कितना काम कर डालना है? कुछ यह भी नहीं सोचते कि कल वे क्या क्या करेंगे? उनका जीवन अधाधुंध चला करता है। मार्ग में चट्टान आ रहा है या भारी गढ्ढा है, यह उन्हें नजर नहीं आता।

संसार में जितने महान् व्यक्ति हुए हैं उन्होंने खूब विचार किया था। जीवन के अनेक पहलुओं पर सामुहिक रूप में नजर डाली थी, तब वे अग्रसर हुए थे। उनके कार्य खूब सोच विचार कर (Delibrately) किए गए थे। उनमें एक क्रम था, एक व्यवस्था थी। सब कुछ यथास्थान था। इसी कारण उन्हें सफलता के दर्शन हुए।

जिसने अपने मन को सुव्यवस्थित कर लिया है उसे प्रलोभनों का कोई भय नहीं है। जैसे किसी मशीन में जरा सा विजातीय कण प्रवेश करते ही वह निज कार्य बन्द कर देती है, उसकी व्यवस्था में गड़बड़ हो जाती है उसी प्रकार स्वस्थ विचार सुव्यवस्थित मन का परिणाम है।

अपने प्रत्येक विचारसे तुम अपने दृष्टिकोण का निर्माण कर रहेहो। प्रत्येक विचार ईंट है, इच्छा चूना तथा तुम्हारा संकल्प सबको दृढ़ता से बांध रहा है।

उत्कृष्ट कार्य सदा उत्तम विचारोंसे उत्पन्न होतेहैं अतः जब मनुष्य के मनमें विवेक की ज्योति जगमगाती है तब उसका मन विशुद्ध होता है। ज्यों २ उसका दृष्टिकोण आध्यात्मिक होता है त्यों २ उसे ऐसा अनुभव होता है कि मेरा जीवन ऐसी मजबूत चट्टान पर बना हुआ है जिसे असफलता की प्रबल आंधियां नहीं हिला सकतीं।

शिक्षा का आदर्श।

(श्री गोपालप्रसादजी, 'बंशी' बेतिया)

जो उद्योग हम में से पशुपन निकाल दे, मक्कारी दूर कर दे, स्वार्थ नष्ट कर दे, अन्याय पूर्ण बल का उपयोग हटा दे, प्रकृति माता के भोगों का न्याय पूर्वक भोग करना सिखादे, उस उद्योग का नाम शिक्षा है।

शिक्षा वह है, जिसके द्वारा मनुष्य कठिनाइयों को दूर भगाने के योग्य बन सके। जो बुद्धि के विकास में सहायता दे, जिसमें संकट दूर करने के उपाय ढूँढ़ निकालने का बल हो, जिससे स्वावलम्बन की शक्ति मिलती हो।

लिखना-पढ़ना जान लेना शिक्षा नहीं है, यह केवल सरस्वती देवी के मन्दिर में प्रवेश करना है।

'सा विद्या या विमुक्तये' जो मुक्ति के योग्य बनाती है, वह है विद्या, शेष सब अविद्या हैं।

इस कारण जो शिक्षा, चित्त की शुद्धि न करती हो, मन और इन्द्रियों को वश में रखना न सिखाती हो, निर्भयता और स्वावलम्बन न पैदा करे, उपजीविका का साधन न बताये और गुलामी से छूटने का और आज़ाद रहने का हौसला, साहस और सामर्थ्य न पैदा करे उसमें चाहे जानकारी का खज़ाना ही भरा हो वह वास्तविक नहीं, नक़ली है; भले ही उसमें अगाध तात्विक कुशलता और भाषा पाण्डित्य हो।

शिक्षित वह है, जिसमें पशुपन का अभाव और मनुष्यत्व का पूर्ण समावेश हो। जैसे चारों वेदों से लदा हुआ गधा पंडित नहीं हो जाता, वैसे ही बड़ी २ डिग्रियों का धारण करने वाला शिक्षित नहीं कहला सकता।

शिक्षित मनुष्य वह है, जो अपनी शक्तियों को पहचानता है। जो सदगुणों की महानता समझ

शिक्षित मनुष्य का पहला गुण यही है कि उसमें स्वार्थ की मात्रा कम हो क्योंकि नकली शिक्षा पाये हुए मनुष्य में स्वार्थ की ही प्रधानता पायी जाती है। वही मनुष्य जो सार्वजनिक हितों को सर्वोपरि समझ कर अपने स्वार्थ को उनके सम्मुख तुच्छ समझता है हमारी इस परिभाषा में शिक्षित होने की एक प्रधान शर्त को पूरा करता है।

शिक्षा का दूसरा अंग विचार शक्ति का विकास है। शिक्षित मनुष्य का दूसरा गुण यह होना चाहिए कि उसमें विचार शक्ति हो। वह दूसरों की देखा देखी कोई काम न करे बल्कि सदा ही अपनी बुद्धि को काम में लाकर हित अहित विचार कर किसी काम में हाथ डाले। यही पशु और मनुष्य में भेद है। संक्षेप में हमारी शिक्षा ऐसी हो कि उससे बुद्धि का विकास हो और हम काल की गति के अनुसार उन्नति के पथ का अवलम्बन कर सकें।

शिक्षा का तीसरा अंग अपने स्वरूप को पहचानना, अपने जीवन का उद्देश्य मालूम करना है। खाना, पीना, बच्चों को पालना, इन्द्रिय सुख–ये बातें तो पशु में भी विद्यमान हैं, यदि हमने भी पढ़ लिखकर ऐसा ही जीवन व्यतीत किया तो हमारा पढ़ना लिखना बेकार है। आवश्यकता इस बात की है कि हम अपनी दैवी शक्तियों का विकास कर उनको दूसरों की सेवा में लगादें।

शिक्षित मनुष्य में अपना टुकड़ा कमाकर खाने योग्यता का होना परमावश्यक है। जो मनुष्य अपने आपको पढ़ा लिखा कह कर स्वतंत्र टुकड़ा कमाने की भी शक्ति नहीं रखता, उसका पढ़ना लिखना व्यर्थ है। अतएव शिक्षा-प्रणाली में उद्योग, दस्तकारी की शिक्षा का भी स्थान मिलना चाहिए। इससे मानसिकदासता भी दूर की जा सकेगी। शिक्षा का एक गुण धार्मिक सहनशीलता भी है। शिक्षित व्यक्ति वह है जो अपने विरोधी को वैसी ही मानसिक स्वतंत्रता देने का पक्षपाती हो, जैसे वह

परीक्षा की योग्यता !

(श्री० स्वामी सत्यभक्तजी महाराज, वर्धा)

(१)

पंडितजी बड़े जोर से व्याख्यान फटकार रहे थे। कह रहे थे कि – देखो भाइयो ! धर्म की गति बड़ी सूक्ष्म है, शास्त्रों का मर्म अगाध है गुरुओं के ज्ञान की कोई सीमा नहीं ! श्रद्धा से ही पार पाया जा सकता है. इसलिए श्रद्धा से काम लो ! आजकल के लोगों की बुद्धि ही कितनी है जो हम गुरुओं की–शास्त्रों की–परीक्षा करने की गुस्ताखी करें !

इसके बाद पंडितजी ने ब्राह्मण जाति की महत्ता, गुणहीन ब्राह्मण की पूजा, साधु-वेष धारियों की महत्ता, अमुक जाति के लोगों को न छूने में धार्मिकता, आदि का लम्बा-चौड़ा उपदेश सुना डाला।

सभा में एक युवक बैठा था. उसने बहस करना शुरू कर दिया। और बहस में युवक की बातों का उत्तर पंडितजी से न बना, तब उनने बिगड़कर कहा—मैं जो कहता हूं वह शास्त्र के अनुसार कहता हूं। क्या शास्त्र पर विश्वास नहीं करते ?

'शास्त्र की जो बातें सच्ची या हितकारी मालूम होती हैं—उन पर विश्वास करता हूं, जो ठीक नहीं मालूम होतीं – उनपर कैसे विश्वास करूँ ?'

'तो तुम शास्त्र की परीक्षा करोगे ?'

'क्यों नहीं, आखिर बुद्धि परमात्मा ने किस लिए दी है ?'

'शास्त्रों की परीक्षा के लिए दी है ?'

'शास्त्र ही क्या, हर चीज में से अच्छाई-बुराई जानने के लिए दी है।'

'आजकल के लड़के ऐसे ही हैं ! बनेगा तो एक श्लोक भी नहीं, पर शास्त्र की परीक्षा करेंगे ! परीक्षा करने के लिये ये शास्त्रकारों के गुरु होगये !'

'पर परीक्षा करने लिये श्लोक बनाने की क्या [illegible]

युवक को सेठ धनपतरायजी ने इशारे से दबा दिया। युवक का नाम ज्ञानदास था। वह धनपतराय का बेटा था। धनपतराय ने ही यह उत्सव करवाया था, जिसमें पण्डितजी का प्रवचन हो रहा था।

ज्ञानदास के चुप रहते ही पण्डितजी ने जरा जोर से कहा – देखिए ! परीक्षक बनने के लिए हमें परीक्ष्य से बड़ा होना चाहिए। अध्यापक विद्यार्थी की परीक्षा ले सकता है। जो जिस विषय में अधिक योग्य नहीं, वह उस विषय की परीक्षा कैसे ले सकता है ? क्या इसमें सन्देह है कि हमारी बुद्धि प्राचीन ऋषि महर्षियों की अपेक्षा बहुत तुच्छ है ! तब हम उनकी या उनकी रचनाओं की परीक्षा कैसे कर सकते हैं ?

सब ने कहा—सत्य वचन महाराज !

पंडितजी ने विजयी मुद्रा से चारों तरफ देखा।

(२)

रात में ठाकुरजी की आरती के बाद भजन होने वाले थे. इसके लिए बाहर से अच्छे-अच्छे गवैये बुलाये गये थे, और गायन-कला में जो जितना चतुर समझा जायगा उसे वैसा ही पारितोषिक मिलेगा– यह भी तय हुआ था। गवैयों का निर्णय जनता पर सौंपा गया था और उसमें पंडितजी मुख्य समझे गये, इसलिये गवैयों का निर्णय पंडितजी के हाथ में आ गया।

भजनों के बाद पंडितजी ने नम्बर-वार गवैयों के नाम सुना दिये। जिसका गायन सबसे अच्छा था उसका नाम पहिले लिया गया, इसी क्रम से नाम लेकर पंडितजी ने निर्णय दे दिया। जनता ने भी पंडितजी के निर्णय का समर्थन किया।

पंडितजी के निर्णय के अनुसार जब गवैयों को इनाम दिया जाने लगा, तब बीच में ज्ञानदास ने कहा– जरा ठहरिये ! मेरी इच्छा है कि इस मौके पर पंडितजी का भी एक गायन हो जाय।

ज्ञानदास ने हाथ जोड़कर बड़ी नम्रता से कहा- यह कैसे हो सकता है पंडितजी महाराज! जब आप इन बड़े बड़े गवैयों की परीक्षा ले सके. उन्हें नम्बर दे सके, तब आप इनसे अच्छा गाना नहीं जानते,-इस बात पर कौन विश्वास करेगा ?

एक श्रोता ने मजाक में कहा- अच्छा है भैया, जब कल पंडितजी लड्डुओं की परीक्षा करें तब उन्हें पाकाचार्य की जगह बिठला देना, क्योंकि पाकाचार्य की परीक्षा करने के कारण ये उससे होशियार ही कहलायेंगे।

पंडितजी को यह उत्तर बहुत अच्छा लगा। उनने मुसकराते हुए कहा- बहुत ठीक कहा भाई आपने। सो भैया ज्ञानदास, गायन की परीक्षा के लिए गायनाचार्य बनने की जरूरत नहीं होती, न रसोइ की परीक्षा के लिए पाकाचार्य बनने की। फलाफल या अच्छे-बुरे का संवेदन इनकी परीक्षा

कहा-
के लिए श्लोक
ग्यता चाहिए, तो गायन की परीक्षा के
गायनाचार्य की योग्यता क्यों न चाहिए ? आपने ही तो कहा था कि परीक्षक बनने के लिए हमें परीक्ष्य से बड़ा होना चाहिए! आपका कौन-सा सिद्धांत ठीक माना जाय? क्या फलाफल से अर्थात समाज के हित-अहित से शास्त्र की परीक्षा नहीं की जा सकती ?

पंडितजी का मुंह लटक गया। चारों तरफ से हँसी के फव्वारे छूटने लगे।

कर्त्तव्य-परायण हैं, जिनमें कर्त्तव्य-शक्ति है, दूसरे का मुंह नहीं ताकते। वे अवसर कते. सिर्फ अवस्था देखते हैं और जैसी ती है उसी की गुरुता के अनुसार वे करते हैं।

अपने दोषों को मत छिपाओ

(शिवप्रताप श्रीवास्तव, असोथर)

जिनमें मानसिक बल नहीं है वे ही अपना दोष स्वीकार करने में थरथराते हैं वे यह नहीं सोचते कि अपराध स्वीकार करना हृदय की दुर्बलता न होकर हृदय का महत्व है। अपना दोष प्रकट कर देने ही से मनुष्य निर्दोष होता है, उसके मन को शान्ति प्राप्त होती है, चरित्र निर्मल होता है, और अयश के बदले सुयश प्राप्त होता है। अनुचित कर्म करके दोष स्वीकार करना साधु-पुरुष का काम है, जो लोग दोष छिपाते हैं उन्हें चोर समझना चाहिये। जो अपना दोष जितना ही छिपाने की चेष्टा करता है उतना ही वह अपने को और दोषी बनाता है। अपने दोषों को छिपा कर कोई साधु नहीं कहला सकता, साधु तभी कहला सकता है जब वह साफ साफ अपना दोष प्रकट कर दे और अपने किये हुये दोषों पर पश्चाताप करे। दोष छिपाने के लिये झूठ बोलना एक दोष के रहते दूसरा दोष करने के बराबर है। दोष से दोष का उद्धार कभी नहीं हो सकता। आग से कोई आग को नहीं बुझा सकता। जिस प्रकार आग बुझाने के लिये पानी की आवश्यकता है उसी प्रकार दोष दूर करने के लिये सत्य की आवश्यकता है। इसे भली भाँति याद रखो कि एक झूँठ के छिपाने के लिये दूसरे झूँठ की आवश्यकता पड़ती है, अर्थात् जहां अपने दोष को छिपाने के लिये मुँह से एक बात झूठ निकली वहाँ दूसरी झूठ आपसे आप आ खड़ी होती है और यही वस्तु मनुष्य के मानसिक तथा पारलौकिक पतन का कारण होती है। जिस प्रकार पर-दोष-दर्शन बुरा है उसी प्रकार अपने दोषों का छिपाना भी बुरा है।

जब अपने से कोई भूल हो जाय तो बहादुरी

सबके सन्मान कीजिये।

(राजकुमारी श्रीरत्नेशकुमारीजी, मैनपुरी स्टेट)

मानव मात्र की यह अभिलाषा रहती है कि उसके सभी परिचित व्यक्ति उससे प्रेम भाव रक्खें और उसके प्रति अच्छी धारणायें रक्खें। क्या आपकी ये कामनायें नहीं हैं? यदि है तो इसके दो ही उपाय हैं (१) सब की सन्मान रक्षा कीजिये और (२) दूसरों के प्रति अमिट सद्भावनायें रखिये। सबकी सन्मान रक्षा का अर्थ केवल इतना ही नहीं है कि आप सभ्यतायुक्त शिष्ट-जन-सम्मत बर्ताव करें और किसी से अपमान पूर्ण व्यवहार न करें वरन् ये साधना पूर्णता को तब प्राप्त होगी जब पीठ पीछे भी आप निन्दा न करें।

यह जान कर कि कोई निन्दनीय कार्य कर रहा है उसे आप प्रेम सहित मधुर शब्दों में उसके कटु प्रतिवादों पर भी धैर्य रखते हुए यथाशक्ति समझावें। फिर भी यदि वह न माने तो या तो उससे वह कार्य छुड़ाने के लिये तन मन से तब तक प्रयत्न पूर्ण शक्ति से करते रहें जब तक उसका पूर्ण तथा त्यागन न करदे या फिर तब तक के लिये उससे असहयोग करलें। आपकी आत्मा और कोई तीसरा मार्ग ढूंढ़ निकाले तो उसे भी ग्रहण कर सकते हैं पर किसी भी जीवनपथ के भ्रान्त पथिक के लिये आपके हृदय में सम्वेदना ही रहे घृणा आपको इस साधना को नष्ट न कर पाये।

सबके प्रति सद्भावनायें रखने की साधना में आप तब सफल हो सकेंगे तभी वह बलवती हो सकेगी जब आप मन में भी किसी के प्रति कुभावनाओं को न ठहरने दें क्यों कि वाणी और क्रियायें हृदय निवासिनी भावनाओं का दर्पण मात्र हैं और इसके विपरीत आचरण विडम्बना मात्र सिद्ध होगा। निन्दनीय कार्यों के कर्ता की [illegible]

गायत्री पर महात्मा गान्धी।

महात्मा गान्धी ने तिब्बिया कालेज देहली का उद्घाटन करते हुए कहा था—

"वर्तमान चिकित्सा प्रणाली धर्म से सर्वथा शून्य है। जो व्यक्ति उचित रूप से प्रतिदिन नमाज पढ़ता है या गायत्री का जप करता है, वह कभी रोग ग्रसित नहीं हो सकता। एक पवित्र आत्मा ही पवित्र शरीर का निर्माण कर सकता है मेरा दृढ़ निश्चय है कि धार्मिक जीवन के नियम आत्मा और शरीर दोनों की यथार्थ रूप से रक्षा कर सकते हैं।"

९ मार्च १९४० के हरिजन सेवक में महात्मा गान्धी ने लिखा था—

"मैं तो उस पीढ़ी का आदमी हूं जिसका प्राचीन भाषाओं की पढाई में विश्वास [illegible]। हर एक राष्ट्रवादी [illegible] ठाकुरजी की आरती के बाद भजन होना हमारे पूर्वजों के लिए बाहर से अच्छे-अच्छे गवैये बच्चों को अपने धर्म की भावना [illegible] में जो जितना तो एक भी लड़के या लड़की को संस्कृत के [illegible] ज्ञान प्राप्त किये बिना नहीं रहना चाहिए। देखिए! गायत्री का अनुवाद हो ही नहीं सकता। मेरी राय में इसका एक खास अर्थ है मूल मंत्र में जो संगीत है वह अनुवाद में कहां से आवेगा?

निष्पक्ष भाव से उत्तेजना रहित होकर विचारेंगे तब सहानुभूति की पावन गंगा आपके हृदय से उस अभागे के लिये बह निकलेगी, जो कि अपनी मानसिक दुर्बलताओं के कारण अपना भयंकर अहित कर रहा है। दूसरों का सम्मान करने की भावना को जितना ही अधिक आप अपनाते जायेंगे उतना ही अधिक आप अपने स्नेही जनों [illegible]

अस्थिर जग में स्थिर धर्म।

(श्री अक्षयसिंहजी चौहान, आंवल खेड़ा)

हम अपने आस पास की हर एक वस्तु को चलते, बदलते और विकसित होते हुए देखते हैं, जड़ और चेतन सभी पर यह नियम लागू होता है। मनुष्य का जीवन भी इस परिवर्तन के नियम से बचा हुआ नहीं है। नन्हा सा बालक क्रमशः शैशव, किशोरावस्था, यौवन और वृद्धावस्था को पार करता है और कुछ दिन बाद फिर वहीं लौट जाता है, जहाँ से वह आया था।

इस अस्थिर दुनियाँ में कोई वस्तु स्थिर नहीं है। जो आज है। उसे कल किसी न किसी रूप में परिवर्तित होना ही पड़ेगा। सृष्टि का संचालन इसी विधान के अनुसार होरहा है यदि वस्तुऐं स्थिर और अचल, अजर, अमर होजाय तो आगे का नवनिर्माण कार्य भी बन्द होजायगा। यह संसार एक ईश्वरीय नाट्यशाला है, इस रंग मंच का सौन्दर्य, आकर्षण और समारोह नटों के परिवर्तन और क्रिया कौशल पर निर्भर है। यदि नट लोग जहां के तहां एक स्थान पर ज्यों के त्यों मूर्ति वत् बिना हिले जुले खड़े रहे तो भला उस नाटक में क्या सुन्दरता रहेगी ? यदि सूर्य, तारे, नक्षत्र, पृथ्वी, बादल आदि एक स्थान पर ही खड़े रहें, यदि पेड़, पौदे, जीव, जन्तु, मनुष्य, सदा एक ही अवस्था में रहें, यदि एक ही ऋतु, एक ही समय सदा बना रहे तो जरा कल्पना तो कीजिए संसार कैसा अजीब, नीरस और कुरूप होजायगा।

संसार की गति शीलता अनिवार्य है। इसकी हर वस्तु को चलना और बदलना आवश्यक है। इस नियम में कोई परिवर्तन नहीं हो सकता। इस परिवर्तन के सुस्थिर नियम की वास्तविकता को समझ कर यदि मनुष्य अपनी जीवन नीति निर्धारित करे तो अपने को अनेक दुख शोकों और पाप तापों से सहज ही बचा सकता है।

जैसे बहती हुई पानी की तरंगों या पौधों पर बिखरी हुई ओस की लड़ियों से कोई ममता या मालिकी का भाव नहीं जोड़ता उसी प्रकार संसार की वस्तुओं पर ममता न जोड़नी चाहिए। अपने या अपने संबंधी जनों के शरीर को हम आज देखते हैं, संभव है इनमें से कल ही किसी का अभाव सामने आखड़ा हो। जिस धन सम्पत्ति, या परिस्थिति में आज हम प्रसन्नता अनुभव करते हैं संभव है कल ही उसका कोई रूप बदल जाय और अरुचि कर एवं अप्रिय परिस्थितियों का सामना करना पड़े। मानव जीवन में ऐसी हलचल पूर्ण तबदीलियां अक्सर आती रहती हैं। बड़े बड़े अवतार, देवी-देवता, राजा, ऋषि और पराक्रमी पुरुष भी इन झोंकों से बच नहीं पाते।

विश्व की गति शीलता के नियम एवं उससे उत्पन्न होने वाले खतरों को हमें पहले से ही समझ लेना चाहिए। और उसके लिए पहले से ही सावधान तथा तैयार रहना चाहिए। संसार की हर एक दृश्यमान वस्तु के लिए हमारा दृष्टिकोण यह रहना चाहिए कि वह गतिशील, नाशवान और परिवर्तन स्वभाव की है। कभी भी इसका स्वरूप बदल सकता है इसलिए उस वस्तु के स्वरूप पर अपना ममत्व केन्द्रित न करें। हां, उन वस्तुओं से अपना संबंध होने पर जो उत्तर दायित्व और कर्तव्य अपने ऊपर आजाता है उस कर्तव्य धर्म से ममता अवश्य स्थापित करें। जिन कुटुम्बियों परिजनों का आश्रय-संबन्ध अपने से है उनके प्रति अपना जो कर्तव्य है वह कर्तव्य किसी प्रकार हाथ से न जाने पावे इनका पूरा पूरा ध्यान रखे। परिवर्तन शील संसार की गतिवान वस्तुओं की एक रूपता और स्थिरता की आशा रखना भूल है, जो इस भूल को करते हैं उन्हें शोक और चिन्ता में डूबना पड़ता है। यह लोक और परलोक उसी का आनन्द मय बन सकता है जो अपने कर्तव्य धर्म और उत्तर दायित्व को पूरा करने में अपना ममत्व और मोह दृढ़ता पूर्वक स्थापित करता है।

मोटापा कैसे दूर हो ?

(डाक्टर विट्ठलदास मोदी, आरोग्य मंदिर, गोरखपुर)

शुरू में ही यह बता देना ठीक होगा कि मोटापा भगाने के दो ही पुरअसर अस्त्र हैं। पहला भोजन पर संयम और दूसरा उचित कसरत। मोटापा एक रोग है और प्रत्येक रोग का कारण होता है, खून में खटाई का बढ़ जाना एवं क्षार की कमी। अतः रोग मुक्त होने के लिये यह आवश्यक है कि ऐसे भोजन में जो खून में खटाई पैदा करते हैं छोड़ दिये जायें। गोश्त, मछली अंडे चीनी, मैदा, दाल घी छटे चांवल आदि भोजन खून में खटाई पैदा करते हैं और उसे रोग बनाते हैं। इनका इस्तैमाल तो स्वस्थ आदमी को भी न करना चाहिये। मिर्च मसाले भी अच्छी चीज नहीं हैं, इनके कारण लोग भूख से अधिक भोजन कर जाते हैं। खून की खटाई को दूर कर रक्त को शुद्ध बनाने वाले एवं रोग मुक्त करने वाले भोजन हैं सब तरह की हरी तरकारियां एवं पत्तीदार तरकारियां और सब तरह के फल। मोटापे के रोगियों को फल और तरकारियों को ही अपना मुख्य भोजन बनाना चाहिये इनमें भी प्रत्येक के गुण दोषों को जान लेना जरूरी है। मोटापे का मुख्य कारण भोजन है अतः भोजन के हर पहलू को समझ लेना आवश्यक है। खून साफ करने के लिये फलों में से भी रसदार फल, संतरा अनन्नास रसभरी, टमाटर आदि सब श्रेष्ठ हैं और उनसे घटकर हैं सेव, नाशपाती, पपीता, खरबूजा, तरबूज जैसे ठोस फल। इसके बाद ही और फलोंको स्थान मिलना चाहिये। तरकारियों में सभी पत्तीदार हरी सब्जियां परमोत्तम हैं। खीरा, ककड़ी, लौकी, परवल, तरोई आदि उनसे कुछ ही कम हैं। रोग के दिनों में सब ही कंद भाजियां त्याज्य हैं केवल गाजर का उपयोग थोड़ा बहुत किया जा सकता है।

इन खाद्य वस्तुओं के अलावा चिकित्सा शुरू करने के एक दो सप्ताह बाद थोड़ी बिना छने आटे की रोटी और थोड़ा मक्खन निकाला हुआ दूध या मठा भी लिया जा सकता है। मोटापा दूर करने के लिये भूखे रहने की आवश्यकता नहीं है। बताई गई खाद्य वस्तुओं को भर भर पेट खाइये। सोचकर इनके आधार पर अनेक आकर्षक भोजन बनाये जा सकते हैं। सबेरे उठते ही एक नीबू का रस पानी में निचोड़ कर पीजिये इससे आपको स्फूर्ति मिलेगी और ताजगी आयेगी। सबेरे के नाश्ते में कोई रसदार फल लीजिये। दो पहर को हरी सब्जियों का सलाद इच्छानुसार खाइये और एक या दो हल्की चपातियां लीजिये। शामको दो पकी तरकारियों और पाव भर मठे का भोजन उपयुक्त होगा। तरकारियों के बजाय कोई ठोस फल भी लिया जा सकता है। इसके अलावा दिन में इच्छा हो तो दो तीन बार फल एवं तरकारियों का रस भी पिया जा सकता है। दुबला होने के लिये टमाटर लौकी और खीरे ककड़ी का रस बहुत फायदे का साबित हुआ है। लौकी और खीरे ककड़ी के रसमें नीबू का रस और आध तोला शहद मिला देने से बहुत बढ़ियां शर्बत बनता है। यदि अधिक भूख लगे तो खीरा, ककड़ी टमाटर आदि को भी खाया जा सकता है।

ऊपर बताये गये भोजन क्रम से वजन काफी घटेगा और शरीर निर्मल होगा। घटने के लिये कभी उतावला न होना चाहिये, समझ बूझ कर एक क्रम को आरंभ कर दीजिये और निश्चिंत हो जाइये। एक ही भोजन पर पहले वजन ज्यादा घटता है पर पीछे कम। इसी समय कसरत शुरू कीजिये। वजन जब घटता है तो त्वचा ढीली पड़ने लगती है, कसरत से उसमें तनाव उत्पन्न होगा, वह सिकुड़ेगा और शरीर में सुघरता आयेगी। पर कसरत बहुत अधिक एवं बहुत कड़ी करने की जरूरत नहीं है। टहलने के साथ कोई हल्की कसरत की जा सकती है।

मनोबल से सुन्दर स्वास्थ्य।

(योगिराज शिवकुमार शास्त्री)

वृद्धावस्था और रोग को दूर कर सौन्दर्य्य को स्थिर रखना मन के अधीन है। मनुष्य एक मनोमय प्राणी है। मनकी प्रत्येक गति का प्रभाव शरीर पर बिना पड़े नहीं रहता। क्रोध करते ही भौंहे तन जाती, आंखें अपनी स्वाभाविकता त्याग कर लाल हो जातीं, मुखाकृत की मनोहरता नष्ट होकर टेढ़ी और भयंकर हो जाती है। बार बार क्रोध करने और निर्दयता तथा क्रूरता के व्यवहार से मनुष्य की सुन्दरता नष्ट हो जाती है। क्रोधी और क्रूर मनुष्य का मुख भयंकर टेढ़ा और कुरूप हो जाता है। ठीक इसी तरह से लोभी और लालची मनुष्य का मुख भी सुडौल और सुन्दर नहीं होता, लोभ वश या धनकी लालच मे मनुष्य इतना दौड़ता और परिश्रम करता है कि उसकी सुन्दरता नष्ट हो जाती है। परिश्रम करना बुरा नहीं है। पर "अति सर्वत्र वर्जयेत्"। अति नहीं होना चाहिये। लोभ मनुष्य से अत्यधिक परिश्रम करा देता है और अत्यधिक परिश्रम सुन्दरता को नष्ट कर देता है। अत्यधिक परिश्रम से मनुष्य के गाल (कपोल) पिचक जाते हैं, आंखें धंस जाती है, गोरा रंग सांवला हो जाता है, शरीर की सारी कोमलता नष्ट हो जाती है, शरीर दुर्बल होजाता है। सारांश यह कि शरीर की सुंदरता नष्ट हो जाती है। लोभ के कारण मनुष्य के हृदय में धन कमाने की चिंता हो जाती है और चिन्ता वह वस्तु है जो शरीर को पीला कर देता है। इपसे चिन्ता करने वाला पुरुष हो वा स्त्री उसमें सच्चा प्रेम नहीं होता। धन का गुलाम प्रेमी नहीं हो सकता। और जिसमें प्रेम नहीं है उसमें कपट, धूर्तता, छल, विश्वासघात और निर्दयता आदि दुर्गुण आपसे आप आ जाते हैं। और यह मानी हुई बात है कि कपटी, छली, निर्दयी और विश्वास-घातक की मुखाकृति में सुन्दरता नहीं रह सकती। प्रायः देखा गया है कि लोभी और लालची भोजन भी अधिक करते हैं। और अधिक भोजन भी सुंदरता को नष्ट कर देता है।

क्रोध और लोभ के बाद मोह का नम्बर है। मोह अज्ञान को कहते हैं। अज्ञान ही सारी विपत्तियों की जड़ है। ज्ञानी का मुख उज्वल और उत्साह तथा प्रसन्नता से भरा रहता है। अज्ञानी अन्धकार में रहने के कारण उत्साह हीन होता है।

मोहवान् और आलसी पुरुष सर्वदा, उदास, उत्साहहीन और अप्रसन्न रहता है। अप्रसन्नता भी सुन्दरता को घटाती है और प्रसन्नता सुन्दरता को बढ़ाती है। इसके सिवा प्रसन्नता स्वास्थ्य की रक्षा करती और युवावस्था को स्थिर रखती है। सर्वदा प्रसन्न रहने से फेफड़ा निरोग और चौड़ा होता है-मुखाकृति सुंदर हो जाती है। पर सर्वदा प्रसन्न वही रह सकता है जो काम, क्रोध, लोभ और मोह से परे हो। काम, क्रोध और मोह से परे रहने वाला मनुष्य प्रेम मय होता है और प्रेम वह रसायन है जो शरीर को सर्वदा युवा, निरोग और सुन्दर बनाये रहता है। प्रेममयी, सती, पार्वती, सीता, सावित्री, शकुंतला, शची, सरस्वती, रुक्मिणी, दमयंती, पद्मिनी और संयोगितादि सभी रूपवती और सुन्दरी थीं। प्रेम मनुष्य को सुन्दर, मनोहर और आकर्षक बनाता है। और द्वेष, शरीर को कुरूप और भयंकर बना देता है।

प्रेम मय हो जाओ प्रेम जीवन को सफल कर देता है सच्चा प्रेमी कभी कुरूप रोगी, भयंकर, वृद्ध और अप्रसन्न नहीं देखा गया। हम सत्य कहते हैं मनुष्य वृद्ध तब होता है जब उसके शरीर में प्रेम की मात्रा बहुत कम रह जाती है। मकरध्वज खाने, पाउडर लगाने और खेज़ाब का प्रयोग करने से कोई युवा और सुन्दर नहीं हो सकता। सौन्दर्य और यौवन को स्थिर रखने वाली सबसे अच्छी औषधि प्रेम है। प्रेम एक स्वर्गीय वस्तु है यह मनुष्य को सरस, शीतल, सुशील और सुन्दर बना देता है।

———

मानवों के प्रति

[रचयिता—श्री महावीरप्रसाद विद्यार्थी, टेढ़ा-उन्नाव]

युग-युग के बिछुड़े हम मानव, आओ अब मिल जाएँ !

देखो, ललित लताएँ द्रुम को पहनातीं फूलों की माला।
भौंरे उड़ उड़ कर मधु पीते, कुंज बने सुन्दर मधुशाला॥
है मादकता भरी मनोरम, छलक रहा है छवि का प्याला।
यहीं कहीं तो छिपा हुआ है वह मनमोहन मुरलीवाला॥

बन कर हम सुख बन के पंछी आओ हिल-मिल गाएँ !

ये नभ—चुम्बी पर्वत, होकर नत चूमेंगे चरण हमारे।
चूर चूर हो मिट जाएँगे इष्ट-मार्ग के कंटक सारे॥
साथी होंगे रात और दिन सूर्य चन्द्र, चमकीले तारे।
जीवन की मरु—भूमि मनोरम मृदु फूलों से गात सँवारे॥

सत्य—सुधा—धारा में मन का कल्मष सकल बहाएँ !

एक सूत्र में बँधे हुए हम बन्धन की ये कड़ियां तोड़ें।
खोए मोती ढूँढ़-ढूँढ़ कर आओ बिखरी लड़िया जोड़ें॥
विषम-स्वार्थमय-भावों की इस मृग-मरीचिका से मुँह मोड़ें।
नाद—मुग्ध कर भोले-भाले हिरनों का बध करना छोड़ें॥

अखिल—विश्व में मानवता का घर-घर दीप जलाएँ !

मानव मानव का शोषण कर हाय ! आज फूला न समाता,
एक रत्न-सञ्चय करता है, एक न सूखी रोटी पाता !
अरे ! आज मानव अपने को 'मानव' कहने में न लजाता,
बर्बर पशु, मोरी के कीड़े, अब क्या मानवता से नाता ?

करें दूर यह तम, जीवन में ज्योति अखण्ड जगाएँ !

युग-युग के बिछुड़े हम मानव, आओ, अब मिल जाएँ !